The Banyan Tree Journal
(An Open Access Peer-reviewed Multidisciplinary Journal)
Annual Journal, No. 2, June 2026 : 137-142
ISSN No. : 3108-0863
www.jtgdc.ac.in/journals

# शरणदाता: नैतिक साहस की एक कथा

**डॉ. सुकृति मिश्रा***

## सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में अज्ञेय की प्रसिद्ध कहानी शरणदाता का नैतिक एवं मानवीय परिप्रेक्ष्य में पुनर्पाठ किया गया है। आजादी एवं विभाजन पर आधारित इस कहानी का अध्ययन प्रायः सांप्रदायिक हिंसा विस्थापन मानवीय त्रासदी के संदर्भ में किया गया है जबकि इसके मानवीय आयामों पर ध्यान अपेक्षाकृत कम दिया गया है। जबकि शरणदाता कहानी का केंद्रीय प्रतिपाद्य विभाजन की कथा नहीं बल्कि हिंसा के बीच मनुष्य की नैतिक चेतना, उत्तरदायित्व और मानवीय साहस का प्रश्न है।

'शरणदाता' प्रथम दृष्टया स्वतंत्रता एवं विभाजन की त्रासदी की कहानी दिखाई पड़ती है,जो कि है भी। किस प्रकार आजादी एवं देश विभाजन के पश्चात लोगों को अपने धर्म की कीमत चुकानी पड़ी। यह कहानी वह सब कुछ अभिव्यक्त करती है। यह केवल एक व्यक्ति देवेंदरलाल की कहानी नहीं है, अपितु उन सभी का दर्द एक साथ बयां करती है जिन्होंने विभाजन की त्रासदी झेली। कहानी में यह बातें बार-बार आ भी रही हैं जैसे हिंदुओं के घर जलते हुए देखकर रफ़ीकुद्दीन आंखों में आंसू लिए हुए का उठता है- "यह भी दिन था देखने को आजादी के नाम पर या अल्लाह" (अज्ञेय, 1992, पृ. 72)। इसी प्रकार जब देवेंद्र लाल को पता चलता है कि खाने में जहर है तो वह दुखी होकर कहता है" आजादी भाई चारा देश राष्ट्र" (अज्ञेय, 1992, पृ. 73)।

पूरी कहानी में ऊपरी तौर पर विभाजन की त्रासदी ही दिखती रहती है जिसकी चर्चा बहुत सारे आलोचकों ने की है। लेकिन कहानी अपने प्रमुख चरित्रों रफ़ीकुद्दीन, शेखअतउल्लाह, देवेंदरलाल तथा जेबुन्निसा आदि के माध्यम से आगे यह स्पष्ट करती है कि समाज का बड़ा संकट बुराई की शक्ति नहीं बल्कि अच्छाई की निष्क्रियता है। साथ-साथ कहानी में अन्य कई सारे महत्वपूर्ण भाव-विचार भी हैं। जिसकी चर्चा प्रस्तुत शोधालेख में की जाएगी।

भारत की स्वतंत्रता जिन विभाजन की शर्तों पर प्राप्त हुई वह 20वीं सदी की सबसे बड़ी मानवीय त्रासदियों में से एक था। यह केवल एक राजनीतिक घटना नहीं थी अपितु आधुनिक दक्षिण एशिया के इतिहास की सबसे गहरी मानवीय, सांस्कृतिक और नैतिक त्रासदियों में से एक थी। इसने न केवल राजनीतिक सीमाओं को ही बल्कि मनुष्य की स्मृति पहचान और सामाजिक विश्वास जैसे अवधारणाओं को भी गहरे प्रभावित किया। लाखों लोग विस्थापित हुए, असंख्य निर्दोष नागरिक

* सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, जगत तारन गर्ल्स डिग्री कॉलेज, प्रयागराज

सांप्रदायिक हिंसा के शिकार बने । सैकड़ो वर्षों से साथ रहने वाले समुदाय अचानक एक दूसरे के प्रति बैर-भाव एवं संदेह से भर उठे। यशपाल, भीष्म साहनी, कमलेश्वर, मोहन राकेश जैसे रचनाकारों ने इस त्रासदी को अलग-अलग तरह से प्रस्तुत किया है। अज्ञेय की कहानी 'शरणदाता' भी इस तरह के साहित्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

कहानी की शुरुआत देवेंदरलाल और रफ़ीकुद्दीन के संवाद से होती है "यह कभी नहीं हो सकता है देवेंदरलाल जी'' (अज्ञेय, 1992, पृ. 73) यह केवल एक मित्र का ही आश्वासन नहीं है अपितु मनुष्य का मनुष्य के प्रति नैतिक उत्तरदायित्व का संकेत भी है। देवेंदरलाल जी को उनके इस आग्रह पर संदेह नहीं है, उन्हें अपने मित्र रफ़ीकुद्दीन से कोई डर भी नहीं है। डर है तो उस उन्मादी भीड़ से जो व्यक्ति को केवल उसके धर्म से पहचान रही है। इसीलिए वह कहते हैं सब तो चले गए, आपसे मुझे कोई डर नहीं बल्कि आपका सहारा है लेकिन आप जानते हैं जब एक बार लोगों को डर जकड़ लेता है और भगदड़ पड़ जाती है तब फिज़ा ही कुछ और हो जाती है, हर कोई किसी को शुबहे की नजर से देखता है और खामखा दुश्मन बन जाता है। आप तो मोहल्ले के सरबरा हैं बाहर से आने जाने वालों का क्या ठिकाना है ? आप तो देख ही रहे हैं, कैसी-कैसी वारदातें हो रही हैं।

इस पर रफ़ीकुद्दीन का उत्तर कहानी के नैतिक विमर्श को और अधिक स्पष्ट करता है। वह कहता है "नहीं साहब हमारी नाक कट जाएगी कोई बात है भला कि आप घर बार छोड़कर अपने ही शहर में पनाहगंज़ी हो जांय" इसके बाद रफ़ीकुद्दीन ने कई तरह के तर्क दिए जैसे "हम पड़ोसी की हिफाजत ना कर सके तो मुल्क की हिफाजत क्या खाक करेंगे" (अज्ञेय, 1992, पृ. 73)। यह मात्र भावनात्मक संवाद नहीं है बल्कि राष्ट्र और नागरिकता की एक वैकल्पिक अवधारणा प्रस्तुत करता है। यदि पड़ोसी की रक्षा नहीं की जा सकती तो राष्ट्रप्रेम का दावा भी खोखला सिद्ध होता है।

इन सारी बातों से देवेंदर को रफ़ीकुद्दीन पर पूरा भरोसा हो गया जिससे उनको न जाना ही बेहतर विकल्प लगा। यह निर्णय केवल मित्रता के कारण नहीं बल्कि वर्षों से बनी साझा संस्कृति पर विश्वास के कारण भी था जिसमें धर्म से अधिक मानवीय संबंधों का महत्व था। यद्यपि देवेंदरलाल के पड़ोसी हिंदू परिवार एक-एक करके धीरे-धीरे शहर छोड़ कर जा चुके थे यहां तक कि उनका नौकर संतू भी एक दिन भाग ही गया और आखिर एक दिन वह आया जब उनके घर तक हुड़दंग जा पहुंचा उनके सामने उनके घर का ताला तोड़ा गया लूटा गया, उनके और उनके पड़ोसियों के घरों को आग के हवाले कर दिया गया। यह तो शुक्र है कि उसके पहले वह रफ़ीकुद्दीन के घर जा चुके थे। यह सारा मंजर देखकर रफ़ीकुद्दीन ने आंखों में आंसू भर कर कहा "यह भी दिन था देखने को आजादी के नाम पर या अल्लाह..." (अज्ञेय, 1992, पृ. 74)। यह वाक्य मात्र रफ़ीकुद्दीन का वाक्य नहीं है बल्कि यह एक ऐतिहासिक विडंबना को अभिव्यक्त करता हुआ वाक्य है। जिस स्वतंत्रता को मनुष्य की गरिमा और सुरक्षा का उत्सव होना चाहिए था वही रक्तपात और अविश्वास की स्मृति बन जाती है।

सारी कथा इस घटना के बाद ही शुरू होती है। रफ़ीकुद्दीन रोज बाहर से आता और देवेंदर को किस्से सुनाता कि किस प्रकार एक नामी हिंदू डॉक्टर को जो मुस्लिम बस्ती में मरीजों को देखने गया था, चाकू घोंप कर मार दिया, किस प्रकार हिंदू मोहल्ले के एक व्यक्ति ने लोगों को अपने घर शरण दिया तो पुलिस वालों ने ही उसे मार दिया किस प्रकार सिखों ने अपने गांव में मुसलमानों को शरण दिया लेकिन ऊपर से दबाव आने के कारण उन्हें उन मुसलमान को लाहौर भेजना पड़ा। इन प्रसंगों के माध्यम से आगे यह दिखाते हैं कि विभाजन के समय नैतिकता का संकट सामूहिक था, व्यक्तिगत नहीं। प्रत्येक व्यक्ति सहायता तो करना चाहता था किंतु सामाजिक दबाव और हिंसक भीड़ की उपस्थिति उसके निर्णय को लगातार कमजोर करती है।

इसके बाद रफ़ीकुद्दीन ने एक वाक्य कहा "आखिर तो लाचारी होती है, अकेले इंसान को झुकना ही पड़ता है (अज्ञेय, 1992, पृ. 75)।" रफ़ीकुद्दीन का यह कथन कथा के सबसे महत्वपूर्ण संकेतों में से एक है। वस्तुतः अज्ञेय इस कथन के माध्यम से समाज के उस नैतिक संकट की ओर संकेत करते हैं जिसमें व्यक्ति चाह के बावजूद अन्याय का प्रतिशोध करने का साहस नहीं उठा पाता। यहीं पर देवेंदरलाल का यह कथन अपना वास्तविक अर्थ ग्रहण करता है कि- "दुनिया में खतरा बुरे की ताक के कारण नहीं अच्छे की दुर्बलता के कारण है।" (अज्ञेय, 1992, पृ. 75)

कहानी में रफ़ीकुद्दीन ना तो नायक है और ना ही खलनायक । वह एक सामान्य मनुष्य है जो अच्छा तो करना चाहता है पर उसका साहस नहीं जुटा पाता। किसी के प्रति सहानुभूति रखना और उसके लिए जोखिम उठाना, यह दो भिन्न-भिन्न नैतिक अवस्थाएं हैं। रफीउद्दीन के पास सद्भावना तो है पर साहस नहीं जो जेबुन्निसा के पास में है।

देवेंदर के लिए यह एक संकेत भी हो सकता था। यद्यपि देवेंदर ने इस बात पर गौर भी किया और कुछ समय तक उनके स्मृति पटल पर यह बात घूमती रही लेकिन उन्होंने कोई प्रतिक्रिया नहीं की। वह चाहते तो अभी भी शहर छोड़ कर जा सकते थे लेकिन उन्हें अपने मित्र पर भरोसा था। इस प्रकार एक दिन जब रफ़ीकुद्दीन के घर कुछलोग आए और अकेले में घंटे बातचीत चलती रही और बाद में पता चला कि वह धमकी देने आए थे तब देवेंद्र ने फिर से शहर छोड़ कर जाने की बात की और कहा कि मेरे कारण आप अपने पूरे परिवार की जान जोखिम में न डालें। सारी कहानी फिर यहीं से शुरू होती है। रफ़ीकुद्दीन ने देवेंदर लाल को अपने एक मित्र शेख अत्ताउल्लाह के पास के यहां भेज दिया जो पेशे से पुलिस ऑफिस में क्लर्क था। एक शरणदाता ने दूसरे की शरण में भेजा। लोक में एक कहावत है "तीन उड़ान में तीतर का भी कभी ठिकाना नहीं लगता" और यही बिल्कुल देवेंदर के साथ भी हुआ।

एक नजर में यह केवल स्थान परिवर्तन की घटना प्रतीत होती है किंतु वस्तुतः यहीं से कहानी का वैचारिक धरातल बदलने लगता है। अब तक कथा का केंद्र सांप्रदायिक हिंसा और बाह्य संकट

था। शेखअतुल्लाह के घर पहुंचने के बाद उसका केंद्र मनुष्य की आंतरिक स्थिति, भय, अकेलापन और स्वतंत्रता की विडंबना बन जाता है। यहां लेखक ने बाहरी हिंसा से अधिक उस मानसिक कारावास को रेखांकित किया है जिसमें वह ग्रस्त मनुष्य धीरे-धीरे स्वयं अपने अस्तित्व से कटने लगता है।

यहीं से कहानी का एक और महत्वपूर्ण पक्ष खड़ा होता है-**क्या केवल जीवित रहना ही सुरक्षा है** ? शेख अतउल्लाह के यहां देवेंदर पूरी तरह कैद थे। न नहा सकते थे, न घूम सकते थे, ना पढ़ सकते थे, ना बिजली की कोई सुविधा। केवल भोजन समय से आ जाता था वह भी एक समय। लेखक की संवेदना यहां अस्तित्ववादी चिंतन के निकट दिखाई देती है जहां मनुष्य की सबसे बड़ी त्रासदी केवल मृत्यु ही नहीं, बल्कि अर्थहीनता, अकेलापन, आत्मवियोजन है। देवेंदरलाल का भी अनुभव कुछ ऐसा ही है अपने देश में अपने ही लोगों के बीच में रहते हुए भी स्वयं को एक अजनबी के रूप में अनुभव करते हैं। यह एक बड़ी त्रासदी है। मनुष्य केवल भूगोल से ही नहीं बल्कि सामाजिक और मानसिक संसार से भी विस्थापित हो रहा है।

इसी संदर्भ में देवेंदरलाल का एक और कथन उल्लेखनीय है-अपनी इस स्थिति को देखकर देवेंद्र ने अपने इस कैद की तुलना अंग्रेजों के कैद एवं आजादी से की है "यह है आजादी! पहले विदेशी सरकार लोगों को कैद करती थी कि वह आजादी के लिए लड़ना चाहते थे अब अपने ही भाई, अपनों को तन्हाई कैद दे रहे हैं क्योंकि वह आजादी के लिए ही लड़ाई रोकना चाहते हैं" (अज्ञेय, 1992, पृ. 74)।

"यदि स्वतंत्र राष्ट्र अपने नागरिक को भय मुक्त जीवन देने में असमर्थ है तो राजनीतिक स्वतंत्रता अधूरी रह जाती है", इस कथन के माध्यम से लेखक ने स्वतंत्रता और स्वाधीनता के अंतर को अत्यंत बारीकी से उद्घाटित किया है। देवेंदरलाल के माध्यम से लेखक ने गांधी जी की उस अवधारणा को भी याद दिलाया है जिसमें स्वराज केवल राजनीतिक सत्ता परिवर्तन नहीं बल्कि निर्भय समाज की स्थापना है। गांधी के लिए भय मुक्त मनुष्य ही वास्तव में स्वतंत्र मनुष्य था।

इन सब के बावजूद एक दिन देवेंदरलाल को खाने में ही जहर मिलाकर मारने का प्रयास किया जाता है। लेकिन खाने में मिली एक पर्ची ने उसकी जान बचाई वह पर्ची भेजी थी जेबुन्निसा ने। लेखक जेबुन्निसा को नहीं जानता था, ना जेबुन्निसा देवेंदर को। लेकिन उसे बंद कोठरी में रहते हुए जेबुन्निसा की आवाज सुनाई पड़ती थी। लेखक ने कहानी में लिखा है देवेंद्र को उसकी आवाज से एक तरह का लगाव था जो कि स्वाभाविक मानवीय लगाव था। घर से आ रही जेबुन्निसा की आवाज सुनकर देवेंदरलाल सोचते "क्या यह आवाज भी लोगों में फिरकापरस्ती का जहर भरती होगी?" (अज्ञेय, 1992, पृ. 75)। देवेंदरलाल के इस कथन से स्पष्ट है की घृणा मानव की स्वाभाविक अवस्था नहीं है, मनुष्य की मूल प्रकृति प्रेम, सहअस्तित्व और करुणा की है। शायद यही स्वाभाविक मानवीय लगाव जेबुन्निसा को भी देवेंदरलाल से रहा होगा जिसने देवेंदर को मौत से बचा लिया। इसी कारण

यह कहानी प्रेम की भी कहानी है, इंसान के इंसान से प्रेम की कहानी। कहा जाता है कि अगर प्रेम है तो दुनिया में कुछ भी बचाया जा सकता है। पूरी कहानी इसी मानवीय प्रेम की कहानी है। आज दुनिया में प्रतिदिन यह मानवीय प्रेम काम होता जा रहा है। जाति, धर्म, लिंग के आधार पर दुनिया में तमाम लड़ाइयां छिड़ी हुई हैं। लोग मनुष्य को मनुष्य की निगाह से ना देखते हुए जाति धर्म लिंग स्थान आदि के आधार पर देख रहे हैं ऐसे में मंगलेश डबराल के कविता की निम्न पंक्तियां याद आती हैं- "प्रेम जिस पर सारी चीजें टिकी हैं, कितना कम होता जा रहा है।" (डबराल, 1995, पृ. 75)। आज जब पूरी दुनिया आंतरिक एवं बाह्य युद्धों से से जूझ रही है ऐसे में यह कहानी और भी प्रासंगिक को उठती है।

यदि शरणदाता के समस्त पात्रों का मूल्यांकन करें तो उसमें सबसे सशक्त व्यक्तित्व है जेबुन्निसा का। यह अलग बात है कि कथानक की दृष्टि से उसका स्थान अपेक्षाकृत सीमित है परंतु वैचारिक दृष्टि से पूरी कहानी की धुरी वही है। यही कारण है की कहानी समाप्त होने के बाद पाठक के मन में रफ़ीकुद्दीन या शेखअतउल्ला की अपेक्षा जेबुन्निसा की स्मृति ज्यादा जीवंत रहती है। कहानी का शीर्षक है 'शरणदाता' तो यह बहुत स्वाभाविक सा प्रश्न है की देवेंदरलाल का वास्तविक शरणदाता कौन है रफ़ीकुद्दीन या शेख अत्ताउल्लाह दोनों ने उसे आश्रय दिया किंतु कहानी का अंत आते-आते स्पष्ट हो जाता है कि वास्तविक शरण केवल भौतिक सुरक्षा नहीं बल्कि जीवन और मनुष्यता दोनों की रक्षा है। यह कार्य अंततः जेबुन्निसा करती है। जेबुन्निसा केवल चेतावनी नहीं देती बल्कि अपने परिवार और सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध जाकर एक निर्दोष मनुष्य का जीवन बचाने का जोखिम उठाती है। यही वह जगह है जहां वह कहानी के नैतिक केंद्र में आ जाती है। जेबुन्निसा किसी वैचारिक भाषण या नैतिक उपदेश के माध्यम से अपनी मनुष्यता नहीं सिद्ध करती बल्कि बल्कि कर्म के माध्यम से उसे प्रमाणित करती है। रफ़ीकुद्दीन के पास सद्भावना है शेख अब्दुल्ला के पास आश्रय देने की इच्छा किंतु जेबुन्निसा के पास जोखिम उठाने का नैतिक साहस है यही साहस उसे कहानी के केंद्र में ला देता है।

यहां कहानी का एक और महत्वपूर्ण पक्ष सामने आता है। विभाजन साहित्य में स्त्री हिंसा विस्थापन सामाजिक उत्पीड़न की शिकार के रूप में तो चित्रित की गई है लेकिन शरण डाटा के रूप में नहीं अज्ञेय इस संरचना से हटकर जेबुन्निसा को एक प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत करते हैं जो किसी की प्रतीक्षा नहीं करती किसी के आदेश की अपेक्षा नहीं रखती अपनी मानवीय जिम्मेदारी का निर्वहन स्वयं करती है।

कहानी के अंत में देवेंदरलाल को जेबुन्निसा का यह खत- "मेरा कोई एहसान आप पर नहीं है, मैं सिर्फ इल्तज़ा करती हूं आपके मुल्क में कोई अल्पसंख्यक मजलूम हो तो उसे याद कर लीजिएगा इसलिए नहीं कि वह मुसलमान है इसलिए कि आप इंसान हैं।" (अज्ञेय, 1992, पृ. 72) यह आग्रह प्रतिशोध की संस्कृति का नहीं बल्कि नैतिक उत्तरदायित्व का है जेबुन्निसा चाहती है कि जिस मनुष्यता को उसने बचाने का प्रयास किया है वह आगे भी जीवित रहे और यहीं शरणदाता शीर्षक

अपना अंतिम और सबसे गहरा अर्थ प्राप्त करता है। वास्तविक शरणदाता वह नहीं जो किसी को अपने घर में छुपा दे बल्कि वह है जो मनुष्य के भीतर मनुष्यता को जीवित रखे। रफ़ीकुद्दीन ने मित्रता निभाई शेख अतउल्लाह ने परिस्थितियों के अनुसार आश्रय दिया परंतु जेबुन्निसा ने अपने नैतिक साहस द्वारा यह सिद्ध किया कि संकट की अंतिम घड़ी में मनुष्य का सबसे बड़ा आश्रय किसी धर्म, जाति या राष्ट्र में नहीं बल्कि दूसरे मनुष्य की करुणा और नैतिक निष्ठा में निहित है। अगर यही बात हम सभी अपने मन में गांठ बांध ले तो दुनिया की तमाम लड़ाइयां आज ही समाप्त हो जाएंगी (सिंह, 2006, पृ. 28)

अज्ञेय बड़े लेखक हैं, भाषा और संवेदना पर उनकी अपनी पकड़ है। शरणदाता कहानी को किस प्रकार विभाजन के त्रासदी की कहानी से प्रेम, मनुष्यता, नैतिकता की कहानी में परिवर्तित कर देना है या उनकी लेखनी ही कर सकती है। यह कला अज्ञेय जैसे बड़े रचनाकार में ही हो सकती है कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक अभिव्यक्ति। अज्ञेय ने स्वयं विभाजन की त्रासदी को झेला था स्वतंत्रता आंदोलन में वह बहुत समय तक जेल में भी रहे उनके पास आंदोलन और विभाजन की विविध स्मृतियां हैं और कला है उन्हें अभिव्यक्त करने की। अज्ञेय की अन्य कहानियां एवं उपन्यासों को पढ़ने पर विभाजन और प्रेम के छोटे-छोटे बिम्ब जगह-जगह पर मिलते ही रहते हैं।

## संदर्भ सूची

अज्ञेय। (1992)। *सम्पूर्ण कहानियाँ*। नई दिल्ली: राजपाल प्रकाशन।

डबराल, मंगलेश। (1995)। *जिसे वे बचा हुआ देखना चाहते हैं*। नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन समूह।

सिंह, नामवर। (2006)। *कहानी नई कहानी*। नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।